क्रान्तदर्शी शलाकापुरुष : भगवान् महावीर

विद्यावाचस्पति -
डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव
भिखना पहाड़ी, पटना...

भगवान् महावीर प्रगतिशील वैज्ञानिक चेतना से सम्पन्न क्रान्तदर्शी पुरुष थे। वे ज्ञान,दर्शन और चरित्र के सम्यक्त्व की उपलब्धि से संवलित प्रसिद्ध पुरुष होने के कारण धन्यतम तिरेसठ शलाकापुरुषों में अन्यतम माने जाते थे। महावीर शलाका पुरुष थे, इसलिए वे ईर्या (शरीरगति) की विलक्षणता और ऊर्जा (मनोगति) की विचक्षणता से विभूषित थे। वे उत्तम शरीर के धारक थे। उनका शरीर वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन से युक्त था। अर्थात् उनका शरीरबंध वज्र की तरह अतिशय कठोर, वृषभ की तरह अत्यधिक बलशाली और लौहमय बाण की तरह अतिशय सुदृढ़ था। सम्पूर्ण सुलक्षणों से संपन्न उनका शरीरसंस्थान या शारीरिक संघटन समचतुरस्र अर्थात् सुडौल था जो अपनी श्रेष्ठ तप्त स्वर्ण जैसी चमक से आँखों को चकमका देने वाला था। यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति के अनुसार महावीर के रूप में गुणों का मणिकांचन संयोग हुआ था। वे रूप के आगार और गुणों के निधान थे।

महावीर का चरित्र परम अद्‌भुत है। वे किसी निश्चित या पूर्व परम्परित साध्य की पूर्ति के लिए नहीं जन्मे थे। जन्म लेना चूँकि संसारचक्र की अनिवार्यता है, इसलिए सामान्य मानव की तरह उन्होंने भी इस अनिवार्यता को मूल्य दिया था। संसार रूप जुए को जन्म और मरण रूप दो बैल खींचते हैं। इस संसार का दूसरा पहलू मुक्ति है, जहाँ जन्म और मरण दोनों नहीं हैं। मुक्ति अमृतत्त्व की साधना का साध्य है। जिस मनुष्य का जैसा विवेक होता है, उसका वैसा ही साध्य होता है और वैसी ही साधना भी होती है। प्रत्येक मनुष्य अपनी योग्यता के अनुकूल अपना साध्य निर्धारित करता है। महावीर जन्मना ततोऽधिक विवेकी थे। इसलिए उन्होंने मुक्ति को अपनी अमृतत्त्व-साधना का साध्य निश्चित किया था

महावीर दुःषम-सुषमाकाल, अर्थात् अवसर्पिणीकाल की छह स्थितियों में चौथी स्थिति और इसी प्रकार छह स्थितियों वाले उत्सर्पिणी काल की तीसरी स्थिति में उत्पन्न हुए थे। वस्तुतः यह दुःख और सुख का सन्धिकाल था। ब्राह्मणों में किसी युगपुरुष के जन्म-ग्रहण को अवतार कहने की परम्परा है, किन्तु श्रमणदृष्टि अवतार शब्द का प्रयोग न करके जन्मकल्याणक शब्द का व्यवहार करती है। इसलिए कि अवतार शब्द में मानवेतर अलौकिक सृष्टि का भाव निहित है, किन्तु मानववादी जैनदृष्टि मनुष्य से इतर किसी अलौकिक शक्ति को मूल्य देकर मानव-अस्मिता के अवमूल्यन की पक्षधर नहीं है।

ईसा-पूर्व छठी शती (५९९ वर्ष) में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की आधी रात को महावीर ने जन्म लिया था। विदेह जनपद की वैशाली में कुण्डपुर नाम का नगर था, जिसके दो भाग थे। क्षत्रिय कुण्डग्राम और ब्राह्मण कुण्डग्राम। महावीर का जन्म ब्राह्मण कुण्डग्राम से गर्भान्तरण के बाद क्षत्रिय कुण्डग्राम में हुआ था। श्रुति-परम्परा यह भी है कि महावीर पहले ब्राह्मणी के गर्भ में प्रतिष्ठित हुए थे, किन्तु तीर्थंकरों के क्षत्रिया के गर्भ से उत्पन्न होने की परम्परा रही थी, इसलिए महावीर को भी ब्राह्मणी के गर्भ से निकालकर क्षत्रिया के गर्भ में प्रतिष्ठित किया गया था। गर्भाहरण की इस घटना को ठाणं (स्थानांगसूत्र) में दस आश्चर्यक पद (अच्छेरग पद) में परिगणित किया गया है (द्र. स्थान. १० सूत्र-१६०)।

महावीर की माता रानी त्रिशला क्षत्रियाणी थीं और पिता राजा सिद्धार्थ क्षत्रिय थे। वे दोनों पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रमणोपासक थे। रानी त्रिशला वैशाली गणराज्य के प्रमुख चेटक की बहन थी। सिद्धार्थ क्षत्रिय कुण्डग्राम के अधिपति थे। आचारचूला (१५.२०) तथा आवश्यकचूर्णि (पूर्वभाग) के अनुसार महावीर के आदरणीय अग्रज का नाम नन्दिवर्धन था, जिनका विवाह चेटक की पुत्री ज्येष्ठा के साथ हुआ था, जो नन्दिनवर्धन की ममेरी बहन थी। उस समय ममेरे भाई-बहन में विवाह की प्रथित परम्परा को सामाजिक मूल्य प्राप्त था। महावीर के काका का नाम सुपार्श्व और बड़ी बहन का नाम सुदर्शना था।

महावीर जब त्रिशला के गर्भ में आये, तब कुण्डग्राम की सम्पदाओं में वृद्धि हुई, इसलिए माता-पिता ने उनका नाम वर्धमान रखा। वे ज्ञात (ज्ञातृ) नामक क्षत्रियवंश में उत्पन्न हुए इसलिए वंश के आधार पर उन्हें ज्ञातृपुत्र (णायपुत्त) भी कहा गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी साधना के दीर्घकाल में उन्होंने अनेक भीषण उपसर्गों (विघ्नों)का वीरता से सामना किया और कभी अपने लक्ष्य से विचलित नहीं हुए। इसलिए वे वीर और महावीर की संज्ञा में अभिहित हुए। आत्मा बहुत दुर्दम होता है (अप्पा हु खलु दुद्दमो-उत्तराध्ययन सूत्र)। उसे कोई महान वीर ही अपने वश में कर सकता है। दुर्दम आत्मा को आत्माधीन करने के कारण ही उन्हें महावीर की सार्थक आख्या प्राप्त हुई। अवश्य ही वे आत्मजयी तीर्थंकर थे। उनके उक्त सभी नामों में महावीर नाम ही पहले जनजिह्वा पर, बाद में इतिहास के पृष्ठों में अंकित हुआ। राजा सिद्धार्थ काश्यपगोत्रीय क्षत्रिय थे। पिता के गोत्रानुसार ही महावीर भी काश्यपगोत्रीय क्षत्रिय के गौरव बने।

बालक्रीड़ा की अवधि में महावीर ने अपनी अनेक अद्‌भुत बाललीलाओं से अपने को अपूर्व वीर बालक प्रमाणित किया और यह सिद्ध किया कि होनहार बिरवान के होत चीकने पात। जैनागमम की मान्यता के अनुसार तीर्थंकर गर्भकाल से ही अवधिज्ञानी (भूत-भविष्य-वर्तमान के जानकर त्रिकालदर्शी) होते हैं। महावीर भी अवधिज्ञानी थे। अध्यापक उन्हें जो पढ़ाना चाहता था वह उनके लिए पूर्वज्ञात था। अन्त में अध्यापक को कहना पड़ा- 'आप स्वयंसिद्ध हैं। आपको पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। भगवान् बुद्ध के ज्ञान की, विशेषतः गणितज्ञान की अपारता देख उनके आचार्य अर्जुन गणक महामात्य ने भी उनसे प्रायः यही कहा था -

ईदृशी ह्यस्य प्रज्ञेयं बुद्धिर्ज्ञानं स्मृतिर्मतिः
अद्यापि शिक्षते चायं गणितं ज्ञानसागरः। (ललितविस्तर)

अर्थात् ज्ञान के समुद्रस्वरूप इनकी (बुद्ध की) विस्मय-कारिणी प्रज्ञा, बुद्धि, ज्ञान, स्मृति (स्मरणशक्ति) और मति (मननशक्ति) है, फिर भी आज इन्हें गणित सिखाया जा रहा है, यह आश्चर्य ही है। युवा होने पर महावीर का विवाह हुआ। सहज विरक्ति के कारण विवाहेच्छा न रहने पर भी माता-पिता के अरमान और आग्रह को मूल्य देने के लिए उन्होंने विवाह किया। दिगम्बर-परम्परा के अनुसार, महावीर ने विवाह प्रस्ताव-को ठुकराकर अविवाहित रहना स्वीकार किया था। श्वेताम्बर-परम्परा के अनुसार महावीर ने स्वदारसन्तोषित्व रूप ब्रह्मचर्य का पालन किया था। परवर्ती काल में स्वदारसन्तोषित्वं ब्रह्मचर्यं सूत्र ही 'एकनारी ब्रह्मचारी' कहावत के रूप में लोकप्रतिष्ठ हो गया।

श्वेताम्बर-साहित्य के अनुसार महावीर का विवाह कौण्डिन्य -गोत्रीय क्षत्रियकन्या यशोदा से हुआ था, समणस्स णं भगवओ महावीरस्स भज्जा जसोया कोडिण्णागोत्तेणं (आचारचूला १५.२२)। उनके प्रियदर्शना नाम की एक कन्या हुई, जिसका विवाह उनकी बड़ी बहन सुदर्शना के पुत्र, भानजे जमाली के साथ हुआ। महावीर के शेषवर्ती (अपरनाम यशस्वती) नाम की दौहित्री (नातिन) हुई।

महावीर अट्ठाईस वर्ष की अवस्था में मातृपितृविहीन हो गये। उन्होंने तत्काल श्रमण बनने की इच्छा जाहिर की पर अपने अग्रज नन्दिवर्द्धन के आग्रह पर रुक गये। अन्ततः तीसवें वर्ष में उन्होंने महाभिनिष्क्रमण किया। वे अमृतत्व की साधना के लिए निकल गये। मुक्ति उनके जीवन का साध्य बन गयी। आत्मिक शांति और वैचारिक क्रांति की मनोभावना के साथ उन्होंने बारह वर्षों से भी अधिक दिनों तक कठिन तपस्वी-जीवन बिताया जो आपने आप में एक बेमिसाल इतिहास है। एक वीतराग राजकुमार का वैराग्य शृंगार और शांत के संघर्ष में शान्त के, याकि हलाहल और अमृत के संघर्ष में अमृत के विजय की अमरगाथा बन गया।

साधना की सिद्धि के बाद महावीर भगवान् हो गये। भगवान् की परिभाषा में कहा गया है -

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च यो वेत्ति स वाच्यो भगवानिति।

अर्थात् मन की प्रवृत्ति और निवृत्ति को, कर्त्तव्याकर्त्तव्य को, भय से मुक्त होकर निर्भयता प्राप्त करने के उपाय को और फिर बन्ध तथा मोक्ष को जो जानता है, उसे ही भगवान् कहते हैं। कहना न होगा कि महावीर ने अपनी तपस्साधना से उक्त द्वंद्वों को सम्यक् रूप से जान लिया था, इसलिए उन्हें भगवान् कहा जाने लगा। भगवान् महावीर ने परम्परागत अहिंसा-धर्म को सामाजिक संदर्भ में सर्वथा नये ढंग से परिभाषित किया और उसे जनजीवन की नैत्यिक जीवनधारा से जोड़ा। उन्होंने अहिंसाव्रत को इसी के अन्य चार रूप-परिणामों-सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह से सम्बद्धकर पाँच व्रतों के रूप में उपस्थित किया। भगवान् महावीर द्वारा प्रवर्तित धर्म में हित है, अहित नहीं है। यथार्थवाद है, अर्थवाद नहीं है (विशेष दृष्टव्य : मनन और मीमांसा, मुनिनथमल युवाचार्य महाप्रज्ञ)। श्रमण, ब्राह्मण, गृहस्थ या श्रावक और अन्यान्य दार्शनिक महावीर के इस धर्मसिद्धांत को कुतूहल के साथ सुनने-अपनाने लगे। महावीर के धर्म-दर्शन के सिद्धांत अधिकतर उनके पट्टधर शिष्य सुधर्मास्वामी और उनके शिष्य अंतिम केवली जम्बूस्वामी के प्रश्नोत्तर के रूप में निबद्ध हुए हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर ब्रह्माग्नि से दीप्त ऋषिकल्प महामानव थे। इसलिए उनके चिन्तन में ज्ञान की बातें अधिक है। शास्त्र की बातें कम। वे स्वयं ज्ञानावतार थे। ज्ञाता और ज्ञेय से परे। ज्ञान प्रज्ज्वलित अग्नि की तरह है और शास्त्र ज्ञानाग्नि के बुझ जाने के बाद अवशिष्ट राख की तरह। ज्ञान की अग्नि सभी कोई सह नहीं पाते। शास्त्र की बात तो सभी सँभाल लेते हैं। भगवान महावीर ने शास्त्र की बातें नहीं की हैं। ज्ञान की बातें कही हैं, जिनका सम्बन्ध दुःखतप्त प्राणियों के आर्त्तिनाश से जुड़ा है। ज्ञान के अंगार से जूझना जितना असाधारण है, शास्त्र की राख को अपनाना उतना ही साधारण। शास्त्र की राख को मानव बदल सकता है, किन्तु ज्ञान की आग तो उसी को बदल देगी। रूपान्तरित कर डालेगी। ज्ञान सत्य का ही पर्याय है, इसलिए तीखा होता है, चुभने वाला। सत्य सदा अपराजित रहता है, किन्तु नियति यह है कि सत्य के पक्षधरों को आजीवन असत्य के विरोध से जूझना पड़ता है। भगवान् महावीर भी यही नियति रही।

भगवान् महावीर ऐसे अप्रतिम महाप्राज्ञ थे, जिनके हाथ में ज्ञान था, शास्त्र नहीं। शास्त्र यदि कीचड़ के समान है, तो ज्ञान कीचड़ में उत्पन्न कमल की तरह। महावीर ने अपने को शास्त्र की कीचड़ से निकालकर कमल की तरह रूपान्तरित किया था। सार ग्रहण करने के बाद भूसे की तरह ग्रन्थ का त्याग कर वह निर्ग्रन्थ हो गये थे। इसके अतिरिक्त वे भावविशुद्ध होने के कारण मन से भी निर्ग्रन्थ हो गये थे और बाहर से भी निर्ग्रन्थ या अचेलप्राय हो गये थे। इस प्रकार, वे शास्त्र, मन और शरीर, तीनों ही स्तरों पर अपरिग्रही हो गये थे। इतना ही नहीं, उनकी ज्ञानाग्नि के चतुर्दिक उठने-बैठने वाले भी उनसे अपने को रूपान्तरित करने की प्रेरणा प्राप्त करते थे। किन्तु हैरानी की बात यह है कि जिस प्रकार धर्म का विरोध अधार्मिक नहीं करते वरन् तथाकथित धार्मिक करते हैं। उसी प्रकार महावीर का विरोध सच्चे ज्ञानियों से नहीं, तथाकथित ज्ञानियों, यानी शास्त्र की राख के पूजकों ने किया। किन्तु विस्मय की बात यह है कि भगवान् महावीर का विरोध ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, उनके धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्त विस्तार पाते चले गये। बाईस परीषहों को सहन करने वाले भगवान् महावीर प्रकृतिविजेता हो गये थे। बारह वर्ष और साढ़े छह मास तक कठोर चर्या का पालन करते हुए वे आत्मसमाधि में लीन रहे। भगवान् साधनाकाल में समाहित हो गये थे, अपने-आप में केवली एकमेक हो गये थे। वे अनन्त चतुष्टय, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त आनंद और अनन्त तीर्थ के धारक बन गये थे। उनका अन्तःकरण सतत् क्रियाशील और आत्मान्वेषी हो गया था।

साधना की सिद्धि के बाद भगवान् महावीर सर्वलोक और सर्वभाव जानने-देखने लगे थे। उनका साधनाकाल समाप्त हो गया था। अब वे सिद्धिकाल की मर्यादा में पहुँच गये थे। तपोजीवन के तेरहवें वर्ष के सातवें दिन वे केवली बन गये थे।

भगवान् ने अपना पहला प्रवचन देव-परिषद् में किया था। अति विलासी तथा व्रत-संयम के अवमूल्यनकारी देवों की सभा में उनका पहला प्रवचन निष्फल हो गया। भगवान् जृम्भक ग्राम (जंभियगाम) से विहार कर मध्यम पावापुरी पधारे। वहाँ सोमिल नामक ब्राह्मण ने एक विराट् यज्ञ का आयोजन किया था। जिसकी पूर्ति के लिए वहाँ इंद्रभूति प्रमुख ग्यारह वेदविद् ब्राह्मण आये हुए थे। धर्म के नव्य व्याख्याता भगवान् महावीर के पधारने की बात सुनकर उन ब्राह्मणों में पाण्डित्य का भाव उद्ग्रीव हुआ। इन्द्रभूति उठे और पराजित करने की भावना से अपने सभी शिष्यों के साथ वे महावीर के समवसरण में आये।

इंद्रभूति को जीव के बारे में संदेह था जिसे मनःपर्याय - ज्ञानी भगवान ने उनके समक्ष रखा गया। इंद्रभूति विस्मित रह गये। वे सहम गये। उन्हें अपने सर्वथा प्रच्छन्न विचार के भगवान् द्वारा प्रकाशित किये जाने पर घोर आश्चर्य हुआ। उनकी अन्तरात्मा भगवान् के चरणों में झुक गयी। जीव और आत्मा को एक दूसरे का पर्याय मानने वाले भगवान् ने उनका संदेह-निवर्तन किया।

इंद्रभूतिप्रमुख (जिनमें अग्निभूति, वायुभूति आदि वेदविदों के नाम उल्लेखनीय हैं) ग्यारहों ब्राह्मणविद् उठे, भगवान को नमस्कार किया और उनके शिष्य बन गये। भगवान् ने उन्हें छह जीवनिकाय (पृथिवी, अप, तेज, वायु, वनस्पति, त्रसकायिक) पाँच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा पच्चीस भावनाओं (पच्चीस प्रकार के आत्मपर्यवेक्षण) का उपदेश दिया। गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति जैनवाङ्मय में गौतम नाम से प्रतिष्ठित हुए। वहीं भगवान् के प्रथम गणधर और ज्येष्ठ शिष्य बने। भगवान् के साथ इनके संवाद और प्रश्नोत्तर इनके इसी नाम से उपलब्ध होते हैं।

भगवान् महावीर की तपःपूत वाणी ने श्रमणों को तो आकृष्ट किया ही अनेक ब्राह्मणों अन्यतीर्थिक संन्यासियों और परिव्राजकों को भी आवर्जित किया। वे भगवान् पार्श्वनाथ की चातुर्यामिक धर्मपरम्परा के श्रमण, भगवान् महावीर के शिष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनकर उनके पाञ्चयामिकतीर्थ में सम्मिलित हो गये। महावीर ने पार्श्वनाथ के अहिंसा, सत्य अस्तेय, अपरिग्रहमूलक चातुर्यामिक धर्म में ब्रह्मचर्य को जोड़कर पाञ्चयामिक धर्म का प्रवर्तन किया था। अपरिग्रह को स्वच्छन्द यौनाचार से जोड़कर उसकी व्याख्यान करने वाले 'वक्रजड़' लोगों से समाज को बचाने के लिए भगवान् ने ब्रह्मचर्य को व्रत के रूप में स्वीकार किया।

धर्म के संघीय प्रयोगों के तहत भगवान् महावीर ने सम्यक् श्रद्धा पर बल दिया। उनकी मान्यता थी कि सम्यक् श्रद्धा से सम्यक्-असम्यक् सभी प्रकार के तत्त्व सम्यक् हो जाते हैं। उन्होंने स्त्रियों के साध्वी होने और मोक्ष पाने के अधिकार की घोषणा करके अपने विशिष्ट मनोबल का परिचय दिया था। उनके शिष्यों में चौदह हजार साधु और छत्तीस हजार साध्वियाँ थीं। साध्वियों का नेतृत्व महासती चंदनबाला को सौंपा गया था। दिगम्बर सम्प्रदाय वाले स्त्रियों को मोक्ष की अधिकारिणी नहीं मानते। पुरुष-योनि में आने पर ही उनका मोक्ष पाना संभव है।

भगवान् महावीर धर्म और चारित्र के जीवित प्रतिरूप थे। उनके अनुत्तर संयम को देखकर मगध-सम्राट् श्रेणिक (बिम्बिसार) उनका उपासक बन गया। सम्राट् अपने जीवन के पूर्वकाल में भगवान् बुद्ध का उपासक था। उसकी पट्टमहिषी चेलना भी महावीर की उपासिका बन गयी। सम्राट् ने रानी को बौद्ध और रानी ने सम्राट् को जैन बनाने के प्रयत्न किये। पर दोनों अपने सिद्धान्त पर अविचल रहे। अन्त में सम्राट को झुकना पड़ा। वे जैन बन गये (उत्तराध्ययन-२०)।

वैशाली अट्ठारह देशों या जनपदों का समेकित गणराज्य थी, जिसके प्रमुख महाराजा चेटक थे। वे भगवान् महावीर के मामा थे। जैन-श्रावकों में उनका विशिष्ट स्थान था। वे बारह व्रतों (पाँच अणुव्रत एकदेशीय अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहव्रत; तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत) का अनुपालन करने वाले श्रावक थे। उनके सात कन्याएँ थी। वे जैनश्रावक के सिवा किसी अन्य के साथ अपनी कन्याओं का विवाह नहीं करते थे। राजा श्रेणिक ने चेलना के साथ कूटनीतिक ढंग से विवाह किया था। चेटक के सभी जामाता प्रारंभ से ही जैन थे। श्रेणिक भी बाद में जैन बन गया।

अपने दौहित्र कूणिक (अजातशत्रु) के साथ चेटक का भीषण युद्ध हुआ था। संग्रामभूमि में भी चेटक अपने व्रतों का पालन करते थे। उनके समय वैशाली गणराज्य में जैनधर्म का प्रभूत प्रचार हुआ। वैशाली गणराज्य के अट्ठारह सदस्य-राजाओं में नौ मल्लि थे और नौ लिच्छवि। वे सभी महावीर-धर्म के उपासक थे।

उस युग में शासक-सम्मत धर्म को अधिक मूल्य मिलता था। इसलिए राजाओं का धर्म के प्रति आकृष्ट होना स्वाभाविक था। जैन धर्म ने समाज को अपना अनुगामी बनाने के यत्न के साथ ही उसे व्रतनिष्ठ बनाने पर भी बल दिया। तत्कालीन जैन श्रावक सत्य की आराधना के साथ ही सामाजिक दोषों से भी बचने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। भगवान् महावीर ने समाज के नैतिक, चारित्रिक और मानसिक स्वरूप के उत्कर्ष की जो आचारसंहिता दी है, उसका ऐतिहासिक और शाश्वत महत्त्व है।

भगवान् महावीर ने अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त की त्रिपुटी पर अपने धर्म को विन्यस्त करके निश्चय ही समन्वयवादी या वर्ग-वर्णभेद से रहित समतावादी समाज की स्थापना पर बल दिया था। उन्होंने अहिंसा के द्वारा सामाजिक क्रांति, अपरिग्रह के द्वारा आर्थिक क्रांति एवं अनेकान्त के द्वारा वैचारिक क्रांति का उद्घोष किया था। अवश्य ही ये उनके सामाजिक तथ्यान्वेषण के युगान्तरकारी परिणाम हैं। कोई भी आत्मसाधक युगपुरुष सामाजिक व्यवस्था के आधारभूत तथ्यों की उपेक्षा नहीं कर सकता। महावीर ने पददलित लोगों को सामाजिक सम्मान देकर उनमें आत्मभिमान की भावना को उद्बुद्ध किया। उन्होंने हरिकेशी जैसे चाण्डाल को गले लगाया, तो स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष प्रतिष्ठा की अधिकारिणी घोषित किया।

भगवान् महावीर ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए तत्कालीन जनभाषा प्राकृत का माध्यम स्वीकार किया। यह उनकी जनतांत्रिक दृष्टि के विकास का प्रबल परिचायक पक्ष है। भगवान् महावीर का युग क्रियाकाण्डों का युग था। महाभारत की विनाशलीला का प्रभाव अभी जनमानस पर बना हुआ था। जनता त्राण खोज रही थी। अनेक दार्शनिक उसे परमात्मा की शरण में ले जा रहे थे। समर्पण या आत्मनिवेदन का सिद्धान्त बल पकड़ रहा था। श्रमण-परम्परा इसका विरोध कर रही थी। भगवान् पार्श्वनाथ के निर्वाण के बाद किसी शक्ति-शाली नेता-पुरुष का अभाव बना रहा, इसलिए उसका स्वर जनजीवन का ध्यानाकर्षण नहीं कर सका। क्रांतदर्शी शलाकापुरुष भगवान् महावीर ने उस स्वर को पुनः तीव्रता प्रदान कर उसे ततोऽधिक जनसम्प्रेषणीय बनाया। इसलिए आज उनके सर्वोदयी सिद्धान्त राष्ट्रकल्याण की दृष्टि से अधिक प्रासंगिक हो गये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org